लुप्त होती तटीय सुरक्षा पंक्ति

रमेश कुमार दुबे

इस साल अच्छी मानसूनी बारिश से जहां किसानों के चेहरे खिल उठे हैं वहीं देश के कई हिस्से बाढ़ की चपेट में आ चुके हैं। इस बाढ़ की वजह अच्छी बारिश उतनी नहीं है जितनी कि विकास की अंधी दौड़ में पानी के कुदरती निकासी तंत्र को भुला दिया जाना। शहरों का विकास नदियों के बाढ़ क्षेत्रों , तालाबों व समीपवर्ती कृषि भूमि की कीमत पर हो रहा है। शहरों के विस्तारीकरण के दौर में पिछले पांच दशकों में चालीस लाख बड़े और सवा करोड़ छोटे तालाब पाट दिए गए। इन पट गए तालाबों से हर साल भूगर्भीय जल की होने वाली रिचार्जिंग का काम ठप पड़ गया। कमोबेश यही हाल गांवों का भी है। बढ़ती आबादी के कारण चरागाहों , तालाबों, बरसाती नदी-नालों पर अतिक्रमण में तेजी आई। रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते इस्तेमाल ने खेतों में एक कठोर पपड़ी का निर्माण किया जिससे बारिश का पानी रिसने के बजाय बहने लगा।

बाढ़ की एक वजह इमारती लकड़ी की बढ़ती मांग और वृक्षों की कटाई भी है। गौरतलब है कि वृक्ष बारिश के पानी को स्पंज की तरह सोखते हैं। हाल के वर्षों में शहरों में पालिथीन और घरेलू कचरा बाढ़ का एक प्रमुख कारण बन कर उभरा है। इन्हीं परिस्थितियों का नतीजा है कि जरा-सी बारिश से नदियां उफन जाती हैं और रेलवे लाइन व सड़कें पानी में डूब जाती हैं। स्पष्ट है कि दोष बारिश का नहीं , हमारी अदूरदर्शी नीतियों का है जिनके चलते हमने कुदरती सुरक्षा पंक्तियों को नष्ट कर डाला।

विकास की अंधी दौड़ में जो हाल तालाबों , चरागाहों, बरसाती नदी-नालों व वनों का हुआ , वही हाल मैंग्रोव वनों का हो रहा है। इसी का नतीजा है कि तटीय इलाकों में समुद्री तूफानों की विभीषिका में दिन दूनी रात चौगुनी रफ्तार से इजाफा हो रहा है। गौरतलब है कि दुनिया के सबसे बड़े जैविक और आनुवंशिक भंडारगृह के रूप में चर्चित मैंग्रोव को समुद्र के सदाबहार वन भी कहा जाता है। इसके महत्त्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि नब्बे फीसद समुद्री जीव-जंतु अपने जीवन का कुछ न कुछ हिस्सा मैंग्रोव तंत्र में अवश्य बिताते हैं। उष्ण और उपोष्ण कटिबंध के तटीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली मैंग्रोव वनस्पतियां कभी 3.2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र को ढंके हुए थीं जो कि आज आधे से भी कम अर्थात 1.5 करोड़ हेक्टेयर तक सिमट गई हैं। वैसे तो ये वन दुनिया के एक सौ बीस देशों में पाए जाते हैं लेकिन इनका आधा क्षेत्रफल पांच देशों (ब्राजील, इंडोनेशिया, आस्ट्रेलिया, नाइजीरिया व मेक्सिको) में पाया जाता है।

कभी भारत और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में तटीय क्षेत्रों को आच्छादित करने वाले मैंग्रोव वनों का अस्सी फीसद हिस्सा पिछले छह दशकों में नष्ट हो गया। 'स्टेट आफ फारेस्ट रिपोर्ट' के मुताबिक भारत में 4445 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर मैंग्रोव वन पाए जाते हैं जो कि कुल मैंग्रोव वनों का पांच फीसद है। इनमें से सत्तावन फीसद पूर्वी तट पर, तेईस फीसद पश्चिमी तट पर तथा बीस फीसद अंडमान निकोबार द्वीप समूह में पाए जाते हैं।

समुद्री तूफान जैसी आपदा के समय तटीय क्षेत्रों के लिए सुरक्षा पंक्ति का कार्य करने वाले मैंग्रोव वन गहरे संकट में हैं। वैसे तो इन वनों के अस्तित्व को लेकर काफी समय से चिंता जताई जा रही थी , लेकिन इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन आफ नेचर(आइयूसीएन) की हालिया रिपोर्ट ने दुनिया भर के पर्यावरण प्रेमियों के माथे पर चिंता की लकीर खींच दी है। रिपोर्ट के अनुसार , तटीय क्षेत्रों में चल रही विकास गतिविधियों के कारण दुनिया भर में हर छह में से एक मैंग्रोव प्रजाति विलुप्त होने के कगार पर है। जलवायु परिवर्तन , वनों की कटाई और कृषि के कारण भी इन वनों पर खतरा मंडरा रहा है। विश्व में अंतर ज्वार भाटा क्षेत्रों में ये लवण निरोधी उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय मैंग्रोव पाए जाते हैं। ये अत्यंत संवेदनशील और खतरों से

प्रभावित हैं। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार मैंग्रोव वन प्रतिवर्ष एक से दो फीसद की दर से नष्ट हो रहे हैं और एक सौ बीस देशों में से छब्बीस देशों में इनके अस्तित्व पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं।

मैंग्रोव वनों का नष्ट होना आर्थिक और पर्यावरणीय दोनों दृष्टियों से घातक है। मैंग्रोव न केवल जलवायु परिवर्तन से लड़ने में सक्षम हैं बल्कि तटीय क्षेत्रों के उन लोगों को रोजी-रोटी भी मुहैया कराते हैं जिनके पास जीने-खाने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। मैंग्रोव अनेक जंगली जीवों को आश्रय प्रदान करने के साथ-साथ औषधीय महत्त्व की वनस्पतियों के अक्षय भंडार भी हैं। इनकी मजबूत जड़ें न केवल समुद्री लहरों से तटों का कटाव होने से बचाव करती हैं बल्कि काफी घने मैंग्रोव चक्रवाती तूफान की गति को धीमा करके तटीय आबादी को भारी तबाही से भी बचाते हैं। उदाहरण के लिए , वर्ष 1999 में ओड़िशा में आए भयंकर चक्रवात में उन इलाकों में बहुत कम हानि हुई थी जहां मैंग्रोव वनों का वजूद था।

चक्रवाती तूफान के बाद दिल्ली और ड्यूक विश्वविद्यालयों के शोधकर्ताओं की एक टीम ने ओड़िशा के केंद्रपाड़ा जिले में चक्रवात और मैंग्रोव के अंतर्संबंधों का अध्ययन किया। टीम ने पाया कि गांवों व तट के बीच मैंग्रोव की चौड़ाई और चक्रवाती तूफान से होने वाली मौतों में विपरीत संबंध है। चौड़ी पट्टी वाले मैंग्रोव क्षेत्रों में ग्रामीणों की बहुत कम मौतें हुईं। इसके विपरीत , जहां मैंग्रोव वनों की चौड़ाई कम थी वहां बड़े पैमाने पर जान-माल का नुकसान हुआ। अध्ययन में पाया गया कि वर्ष 1944 में ओड़िशा के केंद्रपाड़ा जिले में इकतीस हजार हेक्टेयर जमीन पर मैंग्रोव थे और गांव तथा तट के बीच मैंग्रोव वनों की औसत चौड़ाई 5.1 किलोमीटर थी। लेकिन उसके बाद से धान की खेती के लिए तटीय इलाकों से मैंग्रोव वनों को बड़े पैमाने पर साफ कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि गांवों और तट के बीच मैंग्रोव की औसत चौड़ाई सिकुड़ कर 1.2 किलोमीटर रह गई।

यही कारण है कि 1999 में ओड़िशा में आई चक्रवातीय लहरों ने दस हजार से अधिक लोगों को मौत की नींद सुला दिया। 26 दिसंबर 2004 को जब पूर्वी तट पर सुनामी लहरों का प्रकोप आया था तब तमिलनाडु के पिचावरम और मुथेपेट के घने मैंग्रोव वाले क्षेत्रों में सबसे कम विनाश हुआ। उस समय पर्यावरणविदों और आपदा प्रबंधन के विशेषज्ञों ने तटीय क्षेत्रों में मैंग्रोव की बाड़ विकसित करने का सुझाव दिया था। लेकिन उसके बाद भी नीति-निर्माताओं ने इस कुदरती सुरक्षा पंक्ति को भुला दिया।

दरअसल, तटीय इलाकों में खेती और विकासीय गतिविधियां मैंग्रोव वनों के लिए काल बन गई हैं। बढ़ती जनसंख्या , खाद्यान्न की मांग में वृद्धि के कारण मैंग्रोव वनों को अनुत्पादकमान लिया गया। इसीलिए इन्हें साफ कर धान की खेती, नमक उत्पादन, झींगा मछली पालन, आवासीय, बंदरगाह, औद्योगिक व पर्यटन केंद्रों के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। फिर मैंग्रोव वनों को जलावन, निर्माण, कागज और पीट बनाने के लिए बड़े पैमाने पर काटा गया। बांधों और सिंचाई परियोजनाओं के कारण तटीय क्षेत्रों में ताजे पानी की मात्रा में कमी आई , जिससे समुद्री जल के खारेपन में बढ़ोतरी हुई। समुद्री पानी की क्षारीयता, प्रवाह और तापमान आदि में जो परिवर्तन आया है वह मैंग्रोव वृक्षों पर प्रतिकूल असर डाल रहा है।

जलवायु परिवर्तन से पैदा होने वाले खतरों ने आज पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। वन विनाश , जीवाश्म ईंधन के जलने से कार्बन डाइआक्साइड की बढ़ती मात्रा, वैश्विक ताप वृद्धि, भौतिकतावादी जीवन दर्शन ने दुनिया के अस्तित्व के समक्ष संकट खड़ा कर दिया है। इससे निपटने के लिए भले ही सम्मेलन, मसौदे व संधियां की जा रही हों लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात वाला है। इसका कारण है कि मनुष्य विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति की सुरक्षा पंक्तियों को तहस-नहस करता जा रहा है।

कार्बन तत्त्वों को सोख कर अपने भीतर समेटने की अद्‌भुत क्षमता मैंग्रोव वनों के भीतर है। नेशनल ज्योग्राफिक के फरवरी 2007 में छपे एक लेख के अनुसार मैंग्रोव कार्बन के भंडारघर हैं। किसी अन्य प्राकृतिक पारिस्थितिकी की तुलना में मैंग्रोव की शुद्ध कार्बन उत्पादकता सबसे अधिक होती हे। मैंग्रोव क्षेत्र की एक हेक्टेयर मिट्टी प्रति मीटर की गहराई पर सात सौ टन कार्बन समेटे रहती है। लेकिन तटीय क्षेत्रों में विकासीय गतिविधियों के कारण मैंग्रोव वनों को काटा जा रहा है। इससे बड़े पैमाने कार्बन वायुमंडल में निर्मुक्त हो रही है जिससे ग्लोबल वार्मिंग की समस्या गंभीर रूप धारण करती जा रही है।

आज दुनिया की आधी जनसंख्या तटीय क्षेत्रों में स्थित शहरों व इलाकों में रहती है। ऐसे में ग्लोबल वार्मिंग के चलते समुद्र तल में होने वाली बढ़ोतरी से बड़े पैमाने पर लोगों को निचले इलाकों से निकाल कर सुरक्षित स्थानों पर बसाना होगा। करोड़ों लोगों का पुनर्वास आसान काम नहीं होगा। दक्षिण एशिया और दक्षिण प्रशांतीय द्वीपों के निचले इलाकों से लोगों का बाहर निकाला जाना शुरू भी हो चुका है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन को रोकने या उससे बचाव के लिए किए जा रहे अन्य उपायों के साथ-साथ हमें मैंग्रोव वनों के संरक्षण की ओर भी ध्यान देना होगा। इससे न केवल वायुमंडलीय कार्बन डाइआक्साइड में कमी आएगी बल्कि समुद्री तूफानों की विभीषिका से तटीय लोगों की सुरक्षा होगी और उनकी रोजी-रोटी भी नहीं छिनेगी।

जनसत्ता (नई दिल्ली), 17 August 2016